International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 12-06-2026, Accepted: 12-07-2026, Published: 27-07-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 43-46

निर्मला: महिला सशक्तिकरण, समकालीन नारीवादी विमर्श एवं सामाजिक न्याय

डॉ. सी. मोहना
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी डिपार्टमेंट, श्री सारदा कॉलेज फॉर विमेन (ऑटोनॉमस), सलेम, तमिलनाडु, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.3.12198

सारांश
मुंशी प्रेमचंद का निर्मला (1927) हिन्दी साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सामाजिक–यथार्थवादी उपन्यास है, जिसमें भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक संरचना, दहेज–प्रथा, अनमेल विवाह, स्त्री की अस्मिता, पारिवारिक अविश्वास तथा सामाजिक नैतिकता की जटिलताओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया है। यह उपन्यास केवल एक स्त्री की व्यक्तिगत त्रासदी का आख्यान नहीं है, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था का गहन विश्लेषण भी है, जिसमें स्त्री का जीवन परिवार, परम्परा और पुरुष–प्रधान सत्ता के बीच निरंतर नियंत्रित होता रहता है।
प्रेमचंद ने निर्मला के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि स्त्री के जीवन की अधिकांश समस्याएँ उसकी व्यक्तिगत दुर्बलता से उत्पन्न नहीं होतीं, बल्कि वे सामाजिक कुरीतियों और असमान शक्ति–संबंधों का परिणाम हैं। विशेषतः दहेज–प्रथा और अनमेल विवाह को उन्होंने स्त्री–असमानता की केंद्रीय सामाजिक समस्याओं के रूप में प्रस्तुत किया। आधुनिक नारीवादी दृष्टि से देखा जाए तो निर्मला भारतीय समाज में स्त्री के संरचनात्मक शोषण का प्रारम्भिक समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ है।
यह उपन्यास प्रेमचंद के साहित्यिक विकास का भी एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। सेवासदन में जहाँ उन्होंने वेश्यावृत्ति और स्त्री–पुनर्वास की समस्या को उठाया था, वहीं निर्मला में वे घरेलू जीवन, विवाह संस्था, दहेज और पारिवारिक सत्ता–संबंधों के भीतर स्त्री के मानसिक और सामाजिक संघर्ष का गहन विश्लेषण करते हैं। इस दृष्टि से निर्मला हिन्दी उपन्यास परंपरा में स्त्री–विमर्श का एक निर्णायक पाठ है।

मूल शब्दः मुंशी प्रेमचंद, महिला सशक्तिकरण, नारीवाद, सामाजिक न्याय, स्त्री–विमर्श, हिन्दी उपन्यास, लैंगिक समानता, पितृसत्ता, समकालीन विमर्श

उपन्यास की नायिका निर्मला एक शिक्षित, संस्कारी, सौम्य और संवेदनशील युवती है। उसके विवाह की तैयारियाँ एक योग्य एवं समवयस्क युवक से होती हैं, परन्तु विवाह से ठीक पूर्व उसके पिता की आकस्मिक मृत्यु हो जाती है। पिता की मृत्यु के साथ ही परिवार आर्थिक संकट में घिर जाता है। दहेज देने में असमर्थ होने के कारण पूर्व निर्धारित विवाह टूट जाता है।
यह घटना उपन्यास की पूरी त्रासदी का आधार बनती है। सामाजिक प्रतिष्ठा और विवाह की अनिवार्यता के दबाव में निर्मला का विवाह उससे कहीं अधिक आयु वाले विधुर मुंशी तोताराम से कर दिया जाता है। तोताराम के पहले विवाह से कई पुत्र हैं, जिनमें सबसे बड़ा पुत्र मंसाराम लगभग निर्मला की आयु का है। यही परिस्थिति आगे चलकर पारिवारिक तनाव, संदेह और मनोवैज्ञानिक विघटन का कारण बनती है।
निर्मला अपने नए परिवार को अपनाने का पूरा प्रयास करती है। वह अपने सौतेले पुत्रों के प्रति मातृत्व, स्नेह और उत्तरदायित्व का परिचय देती है। विशेष रूप से मंसाराम के प्रति उसका व्यवहार पूरी तरह निष्कलुष और मानवीय है। किंतु पितृसत्तात्मक मानसिकता और आयु–असमान विवाह के कारण तोताराम के मन में संदेह उत्पन्न हो जाता है। वह निर्मला और मंसाराम के संबंधों को संदेह की दृष्टि से देखने लगता है।
यह संदेह केवल व्यक्तिगत दुर्बलता नहीं, बल्कि उस सामाजिक संरचना का परिणाम है जिसमें स्त्री की नैतिकता पर सदैव प्रश्नचिह्न लगाया जाता है, जबकि पुरुष की शंकाओं को सामाजिक वैधता प्राप्त होती है। तोताराम मंसाराम को घर से दूर भेज देता है। मानसिक आघात और उपेक्षा के कारण मंसाराम गंभीर रूप से बीमार पड़ जाता है और अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है। यह घटना निर्मला के जीवन में गहरे अपराधबोध और आत्मपीड़ा का कारण बनती है।
मंसाराम की मृत्यु के बाद भी परिवार में शांति स्थापित नहीं होती। संदेह, अविश्वास और मानसिक दूरी धीरे–धीरे पूरे परिवार को विघटित कर देती है। अन्य पुत्रों का जीवन भी प्रभावित होता है। निर्मला निरंतर आत्मसंयम, त्याग और कर्तव्य का पालन करती रहती है, किंतु उसे न सम्मान मिलता है और न ही विश्वास। अंततः वह मानसिक एवं शारीरिक रूप से टूट जाती है और उसका जीवन करुण अंत की ओर बढ़ता है।
समकालीन नारीवादी आलोचना निर्मला को केवल एक सामाजिक सुधारवादी उपन्यास नहीं मानती, बल्कि इसे पितृसत्ता के भीतर स्त्री–अस्तित्व के संकट का गहन मनोवैज्ञानिक और वैचारिक विश्लेषण मानती है। आधुनिक नारीवादी सिद्धांतों के अनुसार निर्मला की सबसे बड़ी त्रासदी यह नहीं कि उसका विवाह वृद्ध पुरुष से हुआ, बल्कि यह कि उसे अपने जीवन के किसी भी महत्त्वपूर्ण निर्णय में भागीदारी का अधिकार प्राप्त नहीं था।
निर्मला का मौन आधुनिक नारीवादी आलोचना में निष्क्रियता नहीं, बल्कि उस सामाजिक संरचना का प्रतीक माना जाता है जहाँ स्त्री की आवाज़ को सुनने की कोई व्यवस्था नहीं होती। उसकी पीड़ा व्यक्तिगत नहीं, बल्कि संरचनात्मक है। वह परिवार के भीतर रहते हुए भी सत्ता–संबंधों से वंचित रहती है।
इस प्रकार निर्मला आधुनिक स्त्री–विमर्श में विवाह संस्था, पारिवारिक सत्ता, स्त्री–अधिकार, लैंगिक न्याय और सामाजिक असमानता पर विचार करने के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में स्थापित होती है। प्रेमचंद ने जिस संवेदनशीलता और यथार्थवाद के साथ स्त्री के मानसिक संसार का चित्रण किया है, वह हिन्दी उपन्यास परंपरा में एक ऐतिहासिक उपलब्धि है।

निर्मला का सामाजिक–ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

मुंशी प्रेमचंद का निर्मला केवल एक पारिवारिक त्रासदी का उपन्यास नहीं है, बल्कि यह बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के भारतीय समाज का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक–ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी है। इस उपन्यास की रचना उस समय हुई जब भारतीय समाज औपनिवेशिक शासन, सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक विषमता और

सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। एक ओर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन गति पकड़ रहा था, वहीं दूसरी ओर समाज के भीतर दहेज–प्रथा, बाल–विवाह, विधवा–विवाह निषेध, स्त्री–अशिक्षा, जातिगत भेदभाव और पितृसत्तात्मक नियंत्रण जैसी समस्याएँ गहराई से विद्यमान थीं। प्रेमचंद ने निर्मला के माध्यम से इन सामाजिक अंतर्विरोधों को अत्यंत यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है।

औपनिवेशिक भारत और सामाजिक परिवर्तन

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में भारत में अनेक सामाजिक सुधार आंदोलनों का उदय हुआ। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार, मुद्रण संस्कृति, सामाजिक संगठनों और सुधारकों के प्रयासों ने स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह, बाल–विवाह उन्मूलन तथा दहेज–प्रथा जैसे प्रश्नों को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाया। तथापि ग्रामीण और मध्यवर्गीय समाज में पारंपरिक मान्यताओं का प्रभाव अत्यधिक बना रहा।

यही द्वंद्व निर्मला के कथानक में परिलक्षित होता है। बाहरी स्तर पर समाज आधुनिकता की ओर बढ़ता दिखाई देता है, परंतु पारिवारिक जीवन अब भी परंपरागत पितृसत्तात्मक मूल्यों द्वारा संचालित है। स्त्री की शिक्षा और नैतिकता की चर्चा तो होती है, किन्तु उसे जीवन के निर्णय लेने का अधिकार नहीं दिया जाता। इस प्रकार प्रेमचंद सामाजिक परिवर्तन की अधूरी प्रक्रिया को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित करते हैं।

दहेज–प्रथा: स्त्री–असमानता का आर्थिक आधार

निर्मला का पूरा कथानक दहेज–प्रथा की त्रासदी से प्रारम्भ होता है। निर्मला का विवाह एक योग्य युवक से होने वाला होता है, किन्तु पिता की मृत्यु के बाद आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है। दहेज देने में असमर्थता के कारण विवाह टूट जाता है। यह घटना यह स्पष्ट करती है कि विवाह संस्था प्रेम, समानता या पारस्परिक सम्मान पर नहीं, बल्कि आर्थिक लेन–देन पर आधारित हो चुकी थी।

दहेज केवल एक सामाजिक कुरीति नहीं, बल्कि स्त्री के वस्तुकरण (commodification) का माध्यम बन जाता है। विवाह एक मानवीय संबंध के बजाय आर्थिक अनुबंध में परिवर्तित हो जाता है। आधुनिक नारीवादी अर्थशास्त्र के अनुसार यह व्यवस्था स्त्री को परिवार पर आर्थिक बोझ के रूप में स्थापित करती है, जिसके परिणामस्वरूप उसके अधिकारों और सम्मान का ह्रास होता है।

प्रेमचंद इस समस्या को केवल नैतिक दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि निर्मला आज भी दहेज–प्रथा के विरुद्ध सबसे प्रभावशाली साहित्यिक कृतियों में गिनी जाती है।

अनमेल विवाह और स्त्री की स्वायत्तता

दहेज–प्रथा का प्रत्यक्ष परिणाम निर्मला का अनमेल विवाह है। उससे कई वर्ष बड़े विधुर मुंशी तोताराम से उसका विवाह इस बात का प्रमाण है कि उस समय विवाह में स्त्री की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था। विवाह का निर्णय परिवार और समाज द्वारा लिया जाता था, जबकि स्त्री केवल उस निर्णय को स्वीकार करने के लिए बाध्य होती थी।

समकालीन नारीवादी दृष्टिकोण से यह केवल आयु–असमानता का प्रश्न नहीं, बल्कि स्त्री की एजेंसी के अभाव का प्रश्न है। निर्मला अपने जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय में स्वयं सहभागी नहीं बन पाती। उसका मौन सामाजिक दबाव और पितृसत्तात्मक नियंत्रण का परिणाम है।

प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि अनमेल विवाह केवल दो व्यक्तियों के बीच असंगति उत्पन्न नहीं करता, बल्कि पूरे परिवार के मानसिक और भावनात्मक संतुलन को प्रभावित करता है। मंसाराम और तोताराम के साथ निर्मला के संबंध इसी असंतुलित वैवाहिक व्यवस्था के कारण त्रासदी में बदल जाते हैं।

पितृसत्ता और संदेह की संस्कृति

निर्मला का सबसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक पक्ष पितृसत्तात्मक मानसिकता का चित्रण है। तोताराम का संदेह केवल एक व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक दुर्बलता नहीं, बल्कि उस सामाजिक संरचना का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें स्त्री की नैतिकता पर निरंतर निगरानी रखी जाती है।

पितृसत्ता स्त्री को परिवार की श्मर्यादाश का प्रतीक मानती है, परंतु उसे विश्वास और समानता का अधिकार नहीं देती। निर्मला का चरित्र इस विडम्बना को उजागर करता है कि वह पूर्ण निष्ठा, त्याग और कर्तव्य का पालन करती है, फिर भी उसे संदेह और अविश्वास का सामना करना पड़ता है।

समकालीन जेंडर स्टडीज़ में इसे (पितृसत्तात्मक निगरानी) कहा जाता है, जहाँ स्त्री का प्रत्येक व्यवहार सामाजिक मूल्यांकन का विषय बन जाता है। प्रेमचंद ने इस मनोवैज्ञानिक हिंसा का अत्यंत सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण किया है।

मध्यवर्गीय समाज का यथार्थ

निर्मला मुख्यतः भारतीय मध्यवर्ग की सामाजिक संरचना को चित्रित करता है। यह वर्ग आर्थिक रूप से सीमित होते हुए भी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए परंपराओं का कठोर पालन करता है। विवाह, दहेज, परिवार की इज़्ज़त और सामाजिक छवि उसके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

निर्मला का परिवार भी इसी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद सामाजिक मान–सम्मान की रक्षा के लिए ऐसे निर्णय लिए जाते हैं जो अंततः पूरे परिवार के विनाश का कारण बनते हैं। प्रेमचंद इस वर्ग की नैतिक दुविधाओं और सामाजिक दबावों का अत्यंत यथार्थ चित्रण करते हैं।

सामाजिक न्याय का प्रश्न

निर्मला केवल स्त्री की पीड़ा का वर्णन नहीं करता, बल्कि सामाजिक न्याय की अवधारणा को भी सामने लाता है। उपन्यास यह प्रश्न उठाता है कि क्या ऐसा समाज न्यायपूर्ण कहा जा सकता है जहाँ स्त्री को शिक्षा, विवाह, संपत्ति और निर्णय लेने के अधिकार से वंचित रखा जाए?

प्रेमचंद का उत्तर स्पष्ट हैकृजब तक सामाजिक संस्थाएँ समानता और मानवीय गरिमा पर आधारित नहीं होंगी, तब तक वास्तविक न्याय संभव नहीं है। इस प्रकार निर्मला भारतीय समाज की संरचनात्मक असमानताओं की आलोचना प्रस्तुत करता है।

समकालीन संदर्भ

यद्यपि निर्मला लगभग एक शताब्दी पूर्व लिखा गया था, उसकी सामाजिक प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। दहेज–प्रथा कानूनी रूप से अपराध होने के बावजूद अनेक क्षेत्रों में विद्यमान है। घरेलू हिंसा, वैवाहिक असमानता, स्त्री की आर्थिक निर्भरता और चरित्र–संदेह जैसी समस्याएँ आज भी विभिन्न रूपों में दिखाई देती हैं।

समकालीन नारीवादी विमर्श निर्मला को केवल ऐतिहासिक उपन्यास नहीं, बल्कि वर्तमान समाज को समझने का एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक पाठ मानता है। यह उपन्यास हमें स्मरण कराता है कि महिला सशक्तिकरण केवल कानूनी सुधारों से नहीं, बल्कि सामाजिक मानसिकता, पारिवारिक संरचना और लैंगिक संबंधों में परिवर्तन से संभव है।

दहेज–प्रथा, अनमेल विवाह एवं पितृसत्तात्मक समाज

मुंशी प्रेमचंद का निर्मला भारतीय समाज में व्याप्त उन सामाजिक कुरीतियों का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करता है, जिन्होंने विशेष रूप से स्त्री के जीवन को गहरे स्तर पर प्रभावित किया।

उपन्यास का मूल कथानक दहेज–प्रथा, अनमेल विवाह तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के त्रिकोण पर आधारित है। ये तीनों तत्व एक–दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं और मिलकर स्त्री के सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक शोषण की संरचना निर्मित करते हैं। प्रेमचंद ने इन समस्याओं को केवल नैतिक या पारिवारिक संकट के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और मानवीय गरिमा के प्रश्नों से जोड़कर प्रस्तुत किया है।

समकालीन नारीवादी विमर्श के आलोक में निर्मला का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि स्त्री की त्रासदी किसी एक घटना का परिणाम नहीं होती, बल्कि सामाजिक संरचनाओं, आर्थिक असमानताओं और पितृसत्तात्मक सत्ता–संबंधों के सम्मिलित प्रभाव से निर्मित होती है। इस दृष्टि से निर्मला भारतीय समाज की लैंगिक राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज़ है।

दहेज–प्रथा: आर्थिक शोषण की सामाजिक व्यवस्था

दहेज–प्रथा निर्मला की केंद्रीय सामाजिक समस्या है। उपन्यास का आरम्भ ही उस परिस्थिति से होता है जहाँ निर्मला के पिता की आकस्मिक मृत्यु के कारण परिवार आर्थिक संकट में पड़ जाता है। परिणामस्वरूप निर्धारित विवाह केवल इसलिए टूट जाता है क्योंकि परिवार अपेक्षित दहेज देने में असमर्थ हो जाता है।

यह घटना इस तथ्य को उद्घाटित करती है कि तत्कालीन समाज में विवाह दो व्यक्तियों का नहीं, बल्कि दो परिवारों के बीच आर्थिक लेन–देन का माध्यम बन चुका था। स्त्री की योग्यता, शिक्षा, संस्कार और व्यक्तित्व गौण हो जाते हैं, जबकि आर्थिक सामर्थ्य विवाह की मुख्य शर्त बन जाती है। इस प्रकार स्त्री का मूल्यांकन उसके व्यक्तित्व से नहीं, बल्कि उसके साथ आने वाली संपत्ति से किया जाता है।

समकालीन नारीवादी अर्थशास्त्र इस स्थिति को स्त्री के वस्तुकरण के रूप में देखता है। दहेज–प्रथा स्त्री को परिवार पर आर्थिक बोझ के रूप में स्थापित करती है, जिससे उसके जन्म से लेकर विवाह तक उसका अस्तित्व एक आर्थिक समस्या के रूप में देखा जाने लगता है। प्रेमचंद ने बिना किसी वैचारिक उपदेश के इस व्यवस्था की अमानवीयता को कथा के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उजागर किया है।

आज भी दहेज निषेध कानून (1961) लागू होने के बावजूद भारत के अनेक भागों में दहेज–संबंधी हिंसा, उत्पीड़न और मृत्यु की घटनाएँ इस उपन्यास की निरंतर प्रासंगिकता सिद्ध करती हैं। निर्मला इस अर्थ में केवल ऐतिहासिक नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक चेतावनी भी है।

अनमेल विवाह: स्त्री की स्वायत्तता का हनन

दहेज–प्रथा का प्रत्यक्ष परिणाम निर्मला का अनमेल विवाह है। उसका विवाह उससे कहीं अधिक आयु वाले विधुर मुंशी तोताराम से कर दिया जाता है। यह विवाह न तो भावनात्मक समानता पर आधारित है और न ही पारस्परिक सहमति पर। यह एक ऐसा सामाजिक समझौता है जिसमें स्त्री की इच्छा का कोई स्थान नहीं है।

आधुनिक नारीवादी सिद्धांत विवाह को तभी न्यायपूर्ण मानते हैं जब उसमें दोनों पक्षों की स्वतंत्र सहमति, समानता और सम्मान हो। निर्मला में इन तीनों तत्वों का अभाव है। निर्मला विवाह का निर्णय स्वयं नहीं लेती; उसके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय परिवार और सामाजिक परिस्थितियाँ लेती हैं। यह स्थिति स्त्री की एजेंसी के पूर्ण अभाव को दर्शाती है।

अनमेल विवाह केवल आयु–अंतर का प्रश्न नहीं है। इसके परिणामस्वरूप पति–पत्नी के बीच संवादहीनता, असुरक्षा, अविश्वास और मानसिक दूरी उत्पन्न होती है। तोताराम स्वयं को निर्मला के योग्य नहीं समझता और यही हीनभावना धीरे–धीरे संदेह का रूप ले लेती है। इस प्रकार प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि असमान वैवाहिक संबंध केवल व्यक्तिगत जीवन ही नहीं, बल्कि पूरे परिवार की संरचना को प्रभावित करते हैं।

पितृसत्तात्मक समाज और स्त्री की निगरानी

निर्मला का सबसे गहन सामाजिक पक्ष पितृसत्तात्मक मानसिकता का विश्लेषण है। पितृसत्ता केवल पुरुष का शासन नहीं, बल्कि वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें निर्णय, अधिकार और नैतिकता की व्याख्या पुरुष–केंद्रित होती है। स्त्री से त्याग, आज्ञाकारिता और मर्यादा की अपेक्षा की जाती है, जबकि पुरुष को अधिकार और नियंत्रण प्राप्त रहता है।

निर्मला अपने सौतेले पुत्र मंसाराम के प्रति मातृत्व, स्नेह और करुणा का व्यवहार करती है। किंतु तोताराम इस संबंध को संदेह की दृष्टि से देखने लगता है। यह संदेह किसी वास्तविक घटना पर आधारित नहीं है; यह उस पितृसत्तात्मक सोच का परिणाम है जो स्त्री की नैतिकता पर सहज विश्वास नहीं करती।

समकालीन जेंडर स्टडीज़ में इसे (पितृसत्तात्मक निगरानी) कहा जाता है। स्त्री के व्यवहार, वेशभूषा, संबंध, आवाजाही और भावनाओं तक पर सामाजिक नियंत्रण स्थापित किया जाता है। निर्मला इस अदृश्य मानसिक हिंसा का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण करता है।

संदेह: मनोवैज्ञानिक हिंसा का रूप

तोताराम का संदेह केवल वैवाहिक समस्या नहीं है; यह मनोवैज्ञानिक हिंसा का उदाहरण है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक और नारीवादी अध्ययन यह स्वीकार करते हैं कि निरंतर अविश्वास, चरित्र–संदेह और भावनात्मक नियंत्रण भी हिंसा के रूप हैं।

निर्मला अपने चरित्र की सफाई देने का प्रयास नहीं करती, क्योंकि उसे ज्ञात है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की सफाई को प्रायः स्वीकार नहीं किया जाता। उसका मौन उसकी स्वीकृति नहीं, बल्कि उसकी सामाजिक विवशता का प्रतीक है।

मंसाराम का घर से दूर भेजा जाना और अंततः उसकी मृत्यु इस बात का प्रमाण है कि पितृसत्ता केवल स्त्रियों को ही नहीं, बल्कि पुरुषों को भी अपनी शंकाओं और असुरक्षाओं के माध्यम से विनष्ट करती है। प्रेमचंद इस प्रकार पितृसत्ता को पूरे परिवार के विघटन का कारण सिद्ध करते हैं।

सामाजिक न्याय की दृष्टि से मूल्यांकन

सामाजिक न्याय का मूल सिद्धांत समान अवसर, गरिमा और अधिकार है। निर्मला में इन तीनों का अभाव दिखाई देता है। निर्मला को विवाह का अधिकार नहीं, संपत्ति का अधिकार नहीं, निर्णय का अधिकार नहीं और अंततः विश्वास का अधिकार भी नहीं मिलता।

समकालीन सामाजिक न्याय के सिद्धांतकृविशेषकर जॉन रॉल्स की न्याय की अवधारणा तथा अमर्त्य सेन और मार्था नुसबॉम के क्षमता दृष्टिकोण के आलोक में देखें तो निर्मला का जीवन उन बुनियादी मानवीय क्षमताओं से वंचित है जो किसी व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करती हैं। उसे शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक निर्णय–क्षमता प्राप्त नहीं है; इसलिए उसका जीवन परिस्थितियों द्वारा नियंत्रित होता है।

इसी प्रकार समकालीन भारतीय नारीवादी चिंतन यह रेखांकित करता है कि स्त्री की वास्तविक मुक्ति केवल कानूनी अधिकारों से नहीं, बल्कि सामाजिक संस्थाओं के लोकतंत्रीकरण से संभव है। प्रेमचंद इस सत्य को कथा के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष

प्रेमचंद की 'निर्मला' हिंदी नॉवेल ट्रेडिशन की टाइमलेस रचनाओं में से एक है। यह भारतीय समाज में मौजूद जेंडर इनइक्वालिटी, दहेज सिस्टम, झूठी शादियों, पेट्रियार्कल सोच और फैमिली पावर

रिलेशन को बहुत सेंसिटिविटी और रियलिस्टिक तरीके से पेश करती है। यह नॉवेल न सिर्फ एक औरत की पर्सनल ज़िंदगी की दुखद कहानी है, बल्कि उस सोशल स्ट्रक्चर की भी आलोचना है जिसमें एक औरत की इच्छाओं, अधिकारों और इंडिविजुअलिटी को फैमिली इज्जत, आर्थिक तंगी और पुरुषों के दबदबे वाले मोरल से दबा दिया जाता है। इस चौप्टर में, 'निर्मला' को आज के फेमिनिस्ट डिस्कोर्स और सोशल जस्टिस की थ्योरीज़ की रोशनी में देखा गया है। इससे यह साफ होता है कि प्रेमचंद की रचना आज भी अपनी आइडियोलॉजिकल इंपॉर्टेंस बनाए हुए है। साथ ही, उनके विज़न की कुछ हिस्टोरिकल लिमिटेशन्स भी सामने आती हैं। निर्मला विरोध की सीधी आवाज़ नहीं बनतीं; उनका कैरेक्टर त्याग, सहनशीलता और मोरल आइडियल्स से बनता है। आज के फेमिनिस्ट विमर्श के नज़रिए से, यह एक सवाल खड़ा करता है: क्या औरतों की आज़ादी सिर्फ़ नैतिक गर्व से ही मुमकिन है, या इसके लिए सामाजिक, राजनीतिक और...

इस स्टडी का एक खास नतीजा यह है कि प्रेमचंद ने औरतों के मुद्दों को सिर्फ़ औरतों के मुद्दों के तौर पर नहीं, बल्कि एक बड़े सामाजिक न्याय के मुद्दे के तौर पर पेश किया। उनके लिए, एक औरत की इज़्ज़त, परिवार की नैतिकता और समाज की तरक्की आपस में जुड़े हुए मुद्दे हैं। किसी औरत के साथ हुआ कोई भी अन्याय सिर्फ़ एक इंसान पर ही नहीं बल्कि पूरे सामाजिक ढांचे पर असर डालता है। 'निर्मला' में, मंसाराम की मौत, परिवार का टूटना, उम्मीद का टूटना और आखिर में निर्मला की मौत, ये सभी इस सामाजिक अन्याय के अहम नतीजे हैं। जब 'निर्मला' को आज के फेमिनिस्ट क्रिटिसिज़्म के नज़रिए से दोबारा पढ़ा जाता है, तो यह साफ़ हो जाता है कि प्रेमचंद का काम आज के फेमिनिस्ट विमर्श का आखिरी नतीजा नहीं है, बल्कि इसके विकास में एक ज़रूरी ऐतिहासिक कड़ी है। बीसवीं सदी की शुरुआत में उन्होंने जो सवाल उठाए थे, वे आज जेंडर जस्टिस, महिला सशक्तिकरण, मानवाधिकार और संवैधानिक समानता पर होने वाली बहसों में और गहराई से खोजे जाते हैं। इस तरह, प्रेमचंद का साहित्य अतीत और वर्तमान के बीच एक वैचारिक पुल का काम करता है।

संदर्भ

1. प्रेमचंद. (2019). निर्मला. राजकमल प्रकाशन. (मूल प्रकाशन 1927).
2. प्रेमचंद. (2020). सेवासदन. राजकमल प्रकाशन.
3. प्रेमचंद. (2021). गोदान. राजकमल प्रकाशन.
4. शर्मा, रामविलास. (2004). प्रेमचंद और उनका युग. राजकमल प्रकाशन.
5. गोयनका, कमलकिशोर. (2012). प्रेमचंद: व्यक्तित्व एवं कृतित्व. प्रभात प्रकाशन.
6. सिंह, नामवर. (2019). इतिहास और आलोचना. राजकमल प्रकाशन.
7. सिंह, बच्चन. (2018). हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास. राधाकृष्ण प्रकाशन.
8. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (2011). हिंदी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन.
9. नागेन्द्र. (2010). हिंदी साहित्य का इतिहास. मयूर पेपरबैक्स.
10. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. (2016). हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास. लोकभारती प्रकाशन.